# अध्यात्म वैभव

मुनि नरेन्द्र विजय

अनादि अनन्त काल से आत्मा संसार में परिभ्रमण कर रही है। आत्मा यद्यपि कर्म का कर्ता है व्यवहार नय के आधार पर। किन्तु निश्चयनय की शुद्ध अपेक्षा से तो जीव कर्म का कर्ता व भोक्ता नहीं है। आत्मा केवल निज गुणों में रमण करने वाला है। वह निज गुण 'चतुष्टय गुण' के नाम से जैन दर्शन के आगम ग्रन्थों एवं प्रकरण ग्रन्थों में उल्लेखित है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सामर्थ्य, अनन्त चरित्र। फिर भी आत्मा एवं कर्म का संयोग कब से हुआ? यह प्रश्न सहज ही मन में हो सकता है। इस प्रश्न के समाधान में उदाहरण के साथ प्रवचनकारों ने शास्त्र में फरमाया है कि स्वर्ण एवं मिट्टी कब से साथ में हुए? इसकी कोई नियमित कालगणना निर्धारित नहीं है। उसी तरह से आत्मा एवं कर्म भी अनादि काल से साथ हैं। आत्मा एवं कर्म का संबंध क्षीरनीरवत् है।

किन्तु हाँ! यह बात नहीं कि "आत्मा कर्म बन्धन से मुक्त नहीं हो सकती।" अवश्य ही अनन्त आत्माएँ मुक्ति को प्राप्त हुई हैं। वर्तमान में भी हो रही हैं (अन्य क्षेत्र में) और भविष्य में भी आत्मा मुक्त होवेंगी। व्यवहार नय की दृष्टि से आत्मा कर्म का कर्ता, भोक्ता एवं मुक्ता भी है। ध्यान देने जैसी बात तो यह है कि जैन दर्शन पुरुषार्थवादी दर्शन है। "स्वयं करो, स्वयं फल पाओ"। इसलिए तो कर्म बन्धन से मुक्त होने के उपाय भी इस दर्शन के अनेक ग्रंथों में उपलब्ध हैं। और इसी तथ्य को लक्ष्य में लेकर अनेक महापुरुषों ने कर्मावरण से मुक्त होकर पुरुष से महापुरुष, मानव से महामानव एवं आत्मा से परमात्मा बने हैं। परमात्म शक्ति स्वयं में भी मौजूद है, किन्तु वह सत्ता में है उदय में नहीं। इसी अमूल्य अध्यात्म सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए मार्गदर्शन भी प्रस्तुत किया है। तत्त्वार्थाधिगमसूत्र उमास्वातिस्वामी विरचित है, वे इस सूत्र में प्रथम अध्याय के प्रथम सूत्र में ही लिखते हैं कि

"सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः"

व्याख्या सरल है—

(१) सम्यग्दर्शन—अर्थात् सीधा देखना
(१) सम्यग्ज्ञान—सीधा जानना
(३) सम्यक्चारित्र—अर्थात्—सदाचार को अपनाना।

ये हैं सही मानों में अध्यात्म वैभव! अमूल्य रत्नत्रय हैं ये। भवरूप उदधि से तिराने के लिये ये तीर हैं।

आत्मा स्फटिकवत् निर्मल एवं विमल है, किंतु उसने अपने स्वयं को भूलकर कुछ भूल भरी बातें स्वीकार करली हैं। इसलिये उसका दर्शन गुण मिथ्यात्व के आवरण से आवरित है। जैसे दीपक में प्रकाश फैलाने की शक्ति निहित है, पर हम दीपक पर बाल्टी अथवा अन्य कुछ आवरण कर दें तो प्रकाश सीमित हो जाता है, एवं अप्रत्यक्ष हो जाता है। उसी तरह से आत्मा में भी दर्शन गुण की अनंत-अनंत प्रकाश किरणें विद्यमान हैं। किन्तु कर्मावरण के कारण आत्मा सत्य एवं तथ्य वस्तु स्थिति को देखने के लिये उत्सुक एवं इच्छुक भी नहीं होती। इस मूलगुण पर कर्म ने कुठाराघात कर जीव को सदा पर भाव में रत रखा है। स्वभाव दशा से विमुख होकर हम विषम स्थिति की ओर बढ़ रहे हैं, हम समझते हैं कि हम प्रगति कर रहे हैं किन्तु आश्चर्य की बात है वह घाणी का बैल, दिन भर चलता है, थकता भी है परन्तु चल-चल कर कहाँ पहुँचेगा?" जी कहाँ पहुँचेगा? "वही घाणी और वही गोल चक्कर"। आजकल यही स्थिति बड़ी ही तीव्र गति से फैल रही है। हाहाकार मचा हुआ है केवल मात्र विषमता के कारण सही दृष्टिकोण ही सही लक्ष्य केन्द्र पर पथिक को पहुंचाता है। दृष्टिकोण में ही अगर विष घुला है तो बताइये अमृतफल कहाँ से मिलेगा? हम दूसरों को गिराकर आगे बढ़ना चाहते हैं, दूसरों के लिये प्रपंच उत्पन्न कर स्वयं प्रपंच मुक्त होना चाहते हैं, हम दूसरों का अपमान कर स्वयं की मान रक्षा चाहते



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं तो क्या सम्यग्दृष्टि यही है? ..... क्या कथनी क्या करणी"! इस विषम दृष्टि ने ही हर समाज में, हर देश में, हर राष्ट्र में, हर मानव के हृदय में असमाधि फैलाई है। अगर हम इस असमाधि से मुक्त होना चाहते हैं तो समाधि स्थल रूप सम्यग्दर्शन के मार्ग पर चलें, यही अध्यात्म वैभव का एक रत्न है जो अंधकार में प्रकाश करता है।

जो ज्ञान आत्मा में शान्ति एवं क्षमता उत्पन्न करे वह सम्यग् ज्ञान। और जो ज्ञान अन्य व्यक्ति को एवं स्वयं को भी अशांति में ले जावे वह मिथ्या ज्ञान। सम्यग्ज्ञान आत्मा को अपने निज गुण में ले जाता है। किन्तु मिथ्या ज्ञान अर्थात् दंभ पूर्वक ज्ञान, आत्मा को गहरे गह्वर में पटक देता है एवं आत्मा को हैरान परेशान कर देता है। केवल स्वयं को ही नहीं अपितु दूसरे अमोघ भाव वाले भव्यात्माओं को भी वह ले डूबता है। ज्ञान इसलिये नहीं कि हम अपने ज्ञान का प्रदर्शन कर लोक मनरंजन करें व वाद-विवाद को बढ़ावा दें। ज्ञान इसलिये भी नहीं कि हम दूसरों को ही बोध देते फिरें एवं अपने हृदय कमल में उसका कुछ भी सार ग्रहण नहीं करें। वह ज्ञान भी ग्राह्य नहीं जो इच्छित वस्तु की व्याख्या में दूसरों का खंडन करे। नय की परिभाषा में स्पष्ट स्पष्टीकरण है कि, जो इच्छित वस्तु की व्याख्या करे वह नय और अनिच्छित वस्तु का खंडन करे वह नयाभास। तात्पर्य यह है कि हम अध्यात्म वैभव के इस ज्ञान मार्ग को प्राप्त कर स्वयं व पर दोनों को हित में रखकर ही जिन शासन में उसका उपयोग करें। वह ज्ञान कदापि प्रशंसनीय नहीं है जो ज्ञान आपस में विवाद फैलावे, असामयिक भाव को उत्पन्न करे, कलह, रोष, को आविर्भूत करे। सम्यग्ज्ञान की यह व्याख्या भी दर्शन ग्रंथों में समझने एवं जानने के योग्य है।

उसी प्रकार सम्यक् आचरण भी जीवन विकास में महत्वपूर्ण भाव अदा करता है जिसके बिना गति, प्रगति असंभावित है। □

---

( जीव-रक्षा : सृष्टि-संतुलन ··· पृष्ठ १८५ का शेष )

विकल्प भी दिये जाने चाहिये। अहिंसा का वातावरण बनाने के लिए इस प्रकार के ग्रन्थों को अल्पमूल्य में उपलब्ध कराना चाहिये।

(३) विदेशों में जहाँ भी शाकाहार को लेकर जो भी प्रयोग हुए हैं, हो रहे हैं, उनकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये और उनका व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिये। हमारी संस्थाएँ इस कार्य को युद्धस्तर पर कर सकती हैं।

(४) बौद्धिक और सामान्य स्तर पर कुछ ऐसी सभा-संगोष्ठियां भी की जानी चाहिये जो अहिंसक जीवन-मूल्यों के महत्व को प्रतिपादित करती हों और शाकाहार के लाभों को बताती हों।

(५) अन्धविश्वासों और भ्रामक धारणाओं का भी वैज्ञानिक तथा तर्कसंगत खण्डन किया जाना चाहिये। आज भी कई गांवों में बलि-प्रथा प्रचलित है।

(६) अन्य प्राणी किस तरह हमारे जीवन के साथ बंधे हुए हैं, वे हमारा क्या-क्या हित करते हैं, उनकी हिंसा हमें अपने ही स्वार्थ के लिए क्यों नहीं करनी चाहिये इत्यादि तथ्य भी लोगों के सामने उघाड़े जाने चाहिये।

इस तरह जहाँ भी, जिस-जैसे स्तर पर शाकाहार और जीव-रक्षा के प्रचार-प्रसार का एक व्यापक कार्यक्रम हमें तय करना चाहिये और उसके क्रियान्वयन में अपनी संपूर्ण शक्ति लगा देनी चाहिये। जैन धर्म की प्रभावना का इससे बड़ा कोई अन्य कार्यक्रम नहीं हो सकता। मुझे विश्वास है समस्त जैन-समाज मेरे द्वारा ऊपर सुझाये गये कार्यक्रम पर गंभीरता से विचार करेगा और अहिंसा के एक उपेक्षित व्यवहार पक्ष को जल्दी ही मूर्त रूप देगा। □

जिस प्रकार मिट्टी से बनी कोठी को ज्यों-ज्यों धोया जाता है, उसमें से गारा के सिवाय सारभूत वस्तु कुछ मिलती नहीं, उसी प्रकार जिस मानव में जन्मतः कुसंस्कार घर कर बैठे हैं, उसको चाहे कितनी ही अकाट्य युक्तियों द्वारा समझाया जाए, वह सुसंस्कारी कभी नहीं होता।

विविध सांसारिक वेशों को चुपचाप देखते रहो, परन्तु किसी के साथ राग-द्वेष मत करो। समभाव में निमग्न रह कर अपनी निजता में लीन रहो, यही मार्ग तुम्हें मोक्षाधिकारी बनायेगा।

—राजेन्द्र सूरि



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org